स्याद्वाद दर्शन और उसके उपयोगका अभाव

स्याद्वादका अर्थ

'स्याद्वाद' इस शब्दके अन्तर्गत दो शब्द हैं—स्यात् और वाद। स्यात्का अर्थ अपेक्षासहित (दृष्टिकोणसहित) तथा वाद शब्दका अर्थ सिद्धान्त या मत होता है। इस प्रकार स्याद्वादका अर्थ सापेक्ष सिद्धान्त समझना चाहिये।

स्याद्वादकी परिभाषा

अपने व दूसरे के विचारों, वचनों व कार्योंमें अपेक्षा या दृष्टिकोणका ध्यान रखना ही स्याद्वादकी परिभाषा है।

स्याद्वादकी आवश्यक्ता

मनुष्यके जितने विचार, वचन व कार्य हैं उनका कोई-न-कोई दृष्टिकोण अवश्य होना चाहिये; उसीके आधार पर उनकी उपयोगिता या अनुपयोगिता समझी जा सकती है। हम अपने विचारों वचनों व कार्योंको दृष्टिकोणके अनुकूल बनायेंगे, तो वे लाभप्रद होंगे, दृष्टिकोणके प्रतिकूल बनायेंगे या उनका कोई दृष्टिकोण नहीं रखेंगे तो वे लाभप्रद तो होंगे ही नहीं, बल्कि कभी-कभी हानिप्रद हो सकते हैं। इसी प्रकार दूसरोंके विचारों, वचनों व कार्योंको उनके दृष्टिकोणको ध्यानमें रखकर देखेंगे तो हम उनकी सत्यता (उपादेयता) या असत्यता (अनुपादेयता) का ज्ञान कर सकेंगे। यदि दूसरेके विचारों, वचनों व कार्योंको उनके प्रतिकूल दृष्टिकोणसे देखेंगे या बिना दृष्टिकोणके देखेंगे तो हम उनकी सत्यता या असत्यताका ज्ञान नहीं कर सकेंगे। इसलिये हमको स्याद्वाद या सापेक्ष सिद्धान्तके अपनानेकी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि जीवनकी स्थिरता के लिये भोजनकी।

स्याद्वादका विकास

यों तो वस्तुएँ तथा उनके विचारक अनादि हैं तो स्याद्वाद भी अनादि ही कहा जायगा, लेकिन आवश्यकताके आधारपर ही किसी भी वस्तुका विचार किया जाता है।

इसी स्याद्वादको ही लें—विचार करनेपर मालूम पड़ता है कि जितना भी लोकव्यवहार है उसका आधार स्याद्वाद ही है, पर जनसाधारण तो स्याद्वादका नाम तक नहीं जानते, और ऐसे मनुष्योंकी भी कमी नहीं है, जो स्याद्वादको जान करके भी अपनाना नहीं चाहते, इतनेपर भी उनका व्यवहार अव्यवस्थित या बन्द नहीं हो जाता। इसका आशय यही है कि जब जिस वस्तुकी आवश्यकता बढ़ जाती है उसके जाने बिना हमारा कार्य नहीं चलता है, तब उसके जाननेकी लोगोंके हृदयमें भावना पैदा होती है और तभीसे उसका विकास माना जाता है। स्याद्वादके विकासका विचार इसी आधारपर किया जाता है।

प्रायः सभी मतोंके अनुसार पौराणिक दृष्टिसे सृष्टिके आदि[1] भागमें जीवन सुख और शान्तिके साम्राज्यसे परिपूर्ण था। शनैः शनैः सुख और शान्तिमें विकृति पैदा हुई अर्थात् लोगोंके हृदयोंमें अनुचित

---

१. प्रायः सभी मत सृष्टिका उत्पाद और विनाश मानते हैं, जैनमत ऐसा नहीं मानता—उसके अनुसार जगत् अनादिनिधन है, पर उसमें सुख और शान्तिकी वृद्धि और हानि रूपसे परिवर्तन माना गया है। इसलिये जैनमतानुसार जिस समय सुख और शान्तिमें हानिका रूप नहीं दिखाई दिया था उसको सृष्टिका आदि भाग समझना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पापवासनाओंका अंकुर जन्मा, वहींसे धर्मतत्व प्रकाशमें आया। तात्पर्य यह कि अनुचित पापवासनाओंसे लोगोंकी अनुचित पापोंमें प्रवृत्ति होने लगी, उसको हटानेके लिये तात्कालिक महापुरुषोंने पापप्रवृत्तिके त्यागरूप व्यवस्था बनाई, उसीको धर्मका रूप दिया गया।

सुख और शान्तिके सहायक नियम या धार्मिक नियम वैसे-वैसे ही बढ़ते गये, जैसे-जैसे उनके प्रतिबन्धक निमित्तोंका प्रादुर्भाव होता गया। इसके अतिरिक्त विविध लोगोंकी विवेकबुद्धिने भी काम किया, जिससे देश-कालके अनुसार नानाप्रकारके धार्मिक नियम बने, और उनकी उपादेयताके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारसे उनका महत्त्व दर्शाया गया। तात्पर्य यह कि धीरे-धीरे धर्मोंमें विविधता पैदा हुई। इस धर्मविविधताके कारण भिन्न-भिन्न समष्टियोंकी रचना हुई। उन समष्टियोंमें कालक्रमसे अपनेको सत्यमार्गानुगामी और दूसरोंको असत्य-मार्गानुगामी ठहरानेकी कुत्सित ऐकान्तिक भावनायें जागृत हुईं। यहींसे दर्शनशास्त्रका कलेवर पुष्ट हुआ, जिसके बल पर लोगोंने स्वपक्षपुष्टि और परपक्ष-खण्डनमें कालयापन करना प्रारम्भ किया, जिससे विरोध-रूपी अन्धकारसे लोक व्याप्त हो गया। उसका अन्त करनेके लिये स्याद्वादरूपी सूर्यका उदय हुआ।

स्याद्वादकी जैनधर्माङ्गता

स्याद्वादतत्त्वका विकास उन महापुरुषोंकी तर्कणाशक्तिका फल है, जिन्होंने समय और परिस्थितिके अनुसार निर्मित धार्मिक नियमोंके परस्पर समन्वय करनेकी कोशिश की थी, तथा इसमें उनको आश्चर्यजनक सफलता भी मिली थी। पर लोकहितभावनामें स्वार्थभावनाका समावेश हो जानेसे उसकी धारा एक देशमें ही रह गई। वे महापुरुष जैन थे, इसलिये कालान्तरमें स्याद्वाद जैनधर्मका मूल बन गया, दूसरोंको स्याद्वादके नामसे घृणा हो गई।

जैनाचारमें स्याद्वाद

इसके विषयमें अमृतचन्द्र सूरिने हिंसाके विषयमें स्याद्वादका जो भावपूर्ण चित्रण किया है वही पर्याप्त होगा। वे कहते हैं—

"कोई मनुष्य हिंसा नहीं करके अर्थात् प्राणियोंको नहीं मार करके भी हिंसाके फलको पाता है, जबकि दूसरा मनुष्य हिंसा करके भी हिंसाके फलको नहीं पाता है। एक मनुष्यको अल्प हिंसा महान् फल देती है जबकि दूसरे मनुष्यको अधिक हिंसा भी अल्प फल देती है। समान हिंसा करनेवाले दो पुरुषोंमेंसे एकको वह हिंसा तीव्र फल देती है और दूसरेको वही हिंसा मंद फल देती है। किसीको हिंसा करनेके पहले ही हिंसाका फल मिल जाता है और किसीको हिंसा करनेके बाद हिंसाका फल मिलता है। किसीने हिंसा करना प्रारम्भ किया, लेकिन बादमें बन्द कर दिया तो भी हिंसा करनेके भाव हो जानेसे हिंसाका फल मिलता है। किसी समय हिंसा एक करता है, उसका फल अनेक भोगते हैं। किसी समय हिंसक अनेक होते हैं और फल एकको भोगना पड़ता है। किसीकी हिंसा हिंसाका अल्पफल देती है किसीकी वही हिंसा अहिंसाका अधिक फल देती है। किसीकी अहिंसा हिंसाका फल देती है, किसीकी हिंसा अहिंसाके फलको देती है।

इस प्रकार विविध प्रकारके भङ्गोंसे दुस्तर हिंसा आदिके स्वरूपको समझानेके लिये स्याद्वादतत्त्वके वेत्ता ही समर्थ होते हैं।"[1]

राजनैतिक दण्डव्यवस्था भी इसी आधारपर बनी हुई है, जिससे हिंसा आदिके विषयमें स्याद्वादका स्वरूप अच्छी तरह समझमें आ सकता है।

१. पुरुषार्थसिद्धयुपाय, श्लोक ५१ से ५८ तक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन संस्कृतिमें स्याद्वादका व्यावहारिक उपयोग उसकी सफलता

समय-समयपर जै.. संस्कृतिमें बहुतसे परिवर्तन हुए होंगे। परन्तु भगवान् महावोरसे लेकर आज तक जितने परिवर्तन हुए वे ऐतिहासिक कहे जा सकते हैं।

जैनियोंके वाह्याचार पर भगवान् महावीरके बादसे विक्रमकी १५वीं, १६वीं शताब्दी तक उत्तरोत्तर अधिक प्रभाव पड़ता गया। इसका कारण यह है कि यद्यपि भगवान महावीर और महात्मा बुद्धने वैदिक क्रियाकाण्डका अन्त कर दिया गया था, पर इस तरहकी भावनाएँ कुछ लोगोंके हृदयमें बनी रही थीं, जिनके आधारपर ब्राह्मण संस्कृतिका उत्थान हुआ। इधर जैनधर्म और बौद्धधर्मकी बागडोरें ढीली पड़ीं, जिससे ब्राह्मण संस्कृतिको बढ़नेका अच्छा मौका मिला और उसका धीरे-धीरे व्यापक रूप बन गया। यही कारण है कि जैनधर्म उससे अछूता न रह सका।

मेरा तो विश्वास है और सिद्ध भी किया जा सकता है कि बौद्धधर्मके तत्कालीन महापुरुषोंने बौद्ध-धर्मके बाह्यरूपमें रंचमात्र परिवर्तन नहीं किया, इसीसे वह भारतसे लुप्त हो गया। किन्तु जैनी स्याद्वादके महत्त्वको समझते थे, उनको देश-कालकी परिस्थितिका अच्छा अनुभव था, इसलिए उन्होंने समयानुसार जैन-धर्मकी सत्ता कायम रखनेके लिये ब्राह्मण संस्कृतिको अपनाया।

उस समय ब्राह्मण संस्कृतिका इतना अधिक प्रभाव था कि सभी लोगोंका झुकाव उस तरफ हो गया था। इसलिये जैनाचार्यों को लिखना पड़ा कि "जिस लोकाचारसे सम्यक्त्वकी हानि या व्रत दूषित नहीं होते हैं वह लोकाचार जैनधर्म बाह्य नहीं कहा जा सकता।" इस प्रकार उस समय जो जैनधर्मसे विमुख हो रहे थे उनकी स्थिरता करते हुए जैनाचार्योंने जैनधर्मकी सत्ता कायम रखी थी जिसका फल यह है कि आज भी भारतवर्षमें जैनी लोग विद्यमान हैं, अन्यथा बौद्धोंकी तरह जैनी भी आज दूसरे धर्मका बखतर पहिने दिखाई देते।

आधुनिक भूलें

ऊपरके कथनसे स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व पुरुषोंने वस्तुव्यवस्थामें अपना सिद्धान्त व अपना आचार व्यवहार स्याद्वादकी सहायतासे निश्चित किया था।

तात्पर्य यह कि किसी भी सिद्धान्तका साधक तर्क है—स्याद्वाद सहायक और विश्वास उसका आधार है। इन तीनोंका आश्रय लेकरके जिन लोगोंने वस्तुव्यवस्थाके सिद्धान्त स्थिर किये थे या जो आज करते हैं उनका ऐसा करना असंगत नहीं कहा जायगा। बल्कि जिसका हृदय तर्क, स्याद्वाद और विश्वाससे व्याप्त होगा उसके द्वारा की गई वस्तुव्यवस्था आदरणीय समझी जायगी। जैन सिद्धान्तकी सत्यता या उपादेयता इसलिये नहीं है कि वह सर्वज्ञभाषित है, किन्तु इसलिये है कि उसका मूल तर्क, स्याद्वाद और विश्वास है। सर्वज्ञ तो सिद्धान्तकी अविरोधतासे सिद्ध किया जाता है। हेतुका साध्य उसी हेतुका हेतु नहीं माना जाता।

इसलिये जो लोग पूर्व पुरुषोंके किसी भी सिद्धान्तको तर्क, स्याद्वाद और विश्वासके बिना मिथ्या सिद्ध करनेकी कोशिश करते हैं वे स्वयं भूल करते हैं और जो किसी सिद्धान्तकी तर्क, स्याद्वाद और विश्वासके अधार पर परीक्षा करना पाप समझते हैं वे भी भूल करते हैं। दोनों ही स्याद्वाद के रहस्यसे अनभिज्ञ हैं।

इसी प्रकार जो आचरण या व्यवहार आज संक्लेश-वर्धक, लोकानुपयोगी, लोकनिन्दनीय हों वे भले ही किसी समय शान्तिवर्धक, लोकोपयोगी व लोकप्रशंसित रहे हों, आज उनको मिथ्या या अनुपादेय समझा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जायगा। इससे विपरीत जो आचार या व्यवहार आज शान्तिवर्धक, लोकोपयोगी व लोकप्रशंसित हों वे भले ही किसी समय संक्लेशवर्धक, लोकानुपयोगी व लोकनिन्दनीय रहे हों, आज उनको सत्य या उपादेय ही समझा जायगा। इसलिये जो लोग परिस्थितिका अध्ययन किये बिना ब्राह्मण संस्कृतिके अपनानेमें तात्कालीन जैनाचार्यों की भूल बतलाते हैं वे स्वयं भूल करते हैं। और जो आज की परिस्थितिका अध्ययन किये बिना उस जमानेकी संस्कृतिको आजकी संस्कृति बनाना चाहते हैं वे भी भूल करते हैं—दोनों ही स्याद्वादके रहस्यसे अनभिज्ञ हैं। इतना ही नहीं, स्याद्वादके रहस्यको हम लोग इतना भूल गये कि "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" की लोकोक्ति जैनियोंके अन्दर ही अन्दर चरितार्थ हो रही है। प्रत्येक जैनी इच्छानुकूल अपनी समझके अनुसार अपने आचार व व्यवहारको ही धर्म समझने लगा है। उसके सामने दूसरोंके उपदेशोंका कुछ महत्त्व नहीं, जबतक कि वे उसकी इच्छाके अनुकूल न हों।

स्याद्वादके उपयोगकी कमीका फल

जहाँ जैनधर्ममें स्याद्वादका अधिक-से-अधिक उपयोग किया गया है वहीं उसके उपयोगमें कमी भी रह गई है। स्याद्वादका उद्देश्य संपूर्ण धर्मोंका समन्वय करके मनुष्यसमाजमें शान्ति स्थापित करना था, लेकिन दूसरी धार्मिक समष्टियाँ स्वार्थवासनाकी पूर्तिके लिये स्वधर्मप्रेमी होती हुई भी परमधर्मासहिष्णु व हटग्राही बन गई थीं, इसलिये उस उद्देशकी पूर्तिमें तो स्याद्वादी असफल ही रहे। इसके अतिरिक्त जैनियोंमें भी स्वार्थवासना आने लगी थी, जिससे जैनी भी स्वधर्मप्रियताके साथ-साथ परधर्मासहिष्णुता व हटग्राहिताके शिकार हो गये, जिससे धीरे-धीरे स्याद्वादी जैनी भी सम्प्रदायवादी बने। स्याद्वादका महत्त्व एक सांप्रदायिक पुष्टिसे अधिक न रह सका। दूसरोंकी दृष्टिमें जैनधर्म एक सम्प्रदाय समझा जाने लगा। इधर जैनियोंने भी पक्षपुष्टिमें अपनी शक्तिका उपयोग करना प्रारम्भ किया, जिससे जैनाचार्य जैसा कि ऊपर स्याद्वादका उपयोग बतला आये हैं उनके अनुसार सम्प्रदाय रूपसे ही जैनधर्मको कायम रख सके। उसका परिणाम यह हुआ कि आज जब साम्प्रदायिकता मनुष्य-समाजका रक्त-शोषण कर रही है उसमें जैनी भी कम भाग नहीं ले रहे हैं। तात्पर्य यह है कि स्याद्वादी होकरके जैनियोंने स्याद्वादका क्रियात्मक उपयोग करना नहीं सीखा, जिससे स्याद्वादके द्वारा मनुष्य-समाजका जो कुछ हित हो सकता था वह न तो हुआ और न हो रहा है।

हमारा कर्तव्य

इस भयानक किन्तु विचारशील युगमें हमारा कर्त्तव्य है कि अपने जीवनको लोकोपयोगी बनावें। यदि हम अपने जीवनको लोकोपयोगी नहीं बना सकते तो विश्वास रखना चाहिये कि हम परलोकके लिये भी कुछ नहीं कर रहे हैं। स्याद्वादसिद्धान्तके अधिकारी रहने मात्रसे हम स्याद्वादका असर दूसरों पर नहीं डाल सकते। कार्योंका ही दूसरोंपर असर हुआ करता है। हम अपने लोकोपयोगी कर्त्तव्यको स्याद्वादके द्वारा निर्धारित कर उसीके लिये जीवन समर्पित कर दें; उसके द्वारा हमारे जीवनको शान्ति ही न होगी बल्कि ऊपरसे धर्म-धर्म चिल्लानेकी भारतकी कुप्रवृत्ति नष्ट होगी एवं जैनधर्मकी लोकोपयोगिता मनुष्य-समाजमें क्रियात्मक चमत्कार दिखला देगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org